ओड़िया बनाम बांग्ला

भाषा विवाद और ओड़िया सांस्कृतिक पहचान

प्रगति महापात्र

दक्षिण एशिया की राजनीतिक संस्कृति और विमर्श में समय-समय पर भाषा विवाद उभरते रहे हैं। इनकी जड़ें कम से कम उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम दशकों में स्पष्ट दिखने लगती हैं। बहुभाषी भारतीय समाज में भाषा और उससे जुड़ी पहचान ने अक्सर टकराव और विवादों को जन्म दिया है और उन्हें सींचा है। ऐसा ही एक विवाद 1860 और 1870 के दशकों में बांग्ला और ओड़िया भाषा को लेकर उभरा।[1] संदर्भ था कचहरी और सरकारी स्कूलों में ओड़िया हटा कर बांग्ला के प्रयोग का प्रस्ताव, और मुद्दा बना — क्या ओड़िया एक स्वतन्त्र भाषा है? इसके इर्द-गिर्द जन्मा ओड़िया भाषा सुरक्षा आंदोलन और यही आधार बना भावी ओड़िया राष्ट्रवाद का जिसकी सियासत की बुनियाद इस माँग पर टिकी कि ओड़िया भाषी इलाक़ों को एक पृथक प्रांत में गठित होना चाहिए।

अगर आधुनिक ओड़िसा पर लिखी इतिहास की तमाम किताबों को देखें तो उनमें 1860-70 के भाषा-विवाद को मील का पत्थर माना जाता है। अक्सर इसे ओड़िया भाषा को लुप्त होने से बचाने वाले आंदोलन का दर्जा दिया जाता है। इस पर इतना कुछ लिखा गया कि यह ओड़िया पहचान का सहज और स्वयंसिद्ध तथ्य मान लिया गया। ज़ाहिर है ओड़िया को हटाने के प्रस्ताव पर ओड़िया समर्थकों को बहुतेरी आपत्तियाँ थीं। अव्वल तो इसमें उन्हें स्थानीय बंगाली अधिकारियों की साज़िश नज़र आयी। उनका कहना था कि 1866 के भीषण अकाल ने ओड़िसा के ब्रितानी अधिकारियों में सहानुभूति जगायी। साथ ही ओड़िया के 'पिछड़ेपन' ने सरकार का ध्यान खींचा — सरकार ने नहरें खुदवायीं और ओड़िया भाषा में शिक्षा को बढ़ावा दिया। ओड़िया राष्ट्रवादियों के अनुसार यह स्थानीय बंगाली अधिकारियों को पसन्द नहीं आया, जिन्होंने ओड़िया को एक ऐसी पिछड़ी भाषा कहा जिसके विकसित होने की संभावना नहीं थी। ऐसी भाषा भला कचहरी और स्कूलों में कैसे इस्तेमाल की जा सकती थी? इन संस्थाओं के लिए बांग्ला उचित भाषा बतायी गयी और यह तर्क देकर कि बांग्ला एक पूर्ण विकसित भाषा थी — ओड़िया तो उसकी मात्र एक डाल थी — महज़ एक बोली। इस प्रकार ओड़िया बनाम बांग्ला विवाद पनपने के लिए उर्वर माहौल तैयार हो गया।

ओड़िया बनाम बांग्ला विवाद को जिस अनुपात में बौद्धिक विमर्श और लोक-चेतना में जगह मिली उससे भाषा का सांकेतिक और राजनीतिक महत्व उजागर होता है। ओड़िया राष्ट्र, ओड़िया भाषा और ओड़िया साहित्य के इतिहास-लेखन में इस 'विवाद' को अक्सर केन्द्र में रख दिया जाता है। ओड़िया सांस्कृतिक पहचान में भाषा की इतनी अहम भूमिका को समझना काफ़ी जटिल है। जब हम भाषा-संबंधी तत्कालीन दस्तावेज़ों को देखते हैं तो उनमें ओड़िया भाषा की 'शुद्धता', 'पुरानेपन' तथा अन्य भाषाओं (अंग्रेज़ी, संस्कृत, बांग्ला) से संबंधों पर ऐसा विमर्श बनता प्रतीत होता है जो भाषा के सवाल से परे जाता है। औपनिवेशिक संदर्भ में भाषा-संबंधी मध्य-वर्गीय तर्क किस प्रकार ओड़िया राष्ट्रवादी चेतना के स्वरूप को गढ़ने लगे यह काफ़ी गूढ़ और दिलचस्प है।

आधुनिक ओड़िसा में सार्वजनिक क्षेत्र की पहली संस्थाएं भाषा से संबंधित थीं। एक ऐसी शुरुआती संस्था नवम्बर 1866 में बालेश्वर में स्थापित हुई — 'उत्कल भाषा उन्नति बिधायिनी सभा'। मई 1867 में कटक में 'उत्कल भाषा

उद्दीपनी सभा' शुरु की गयी जिसका मक़सद था 'भाषा को सुधारना'।[2] इसकी पहली बैठक को अख़बार *उत्कल दीपिका* ने एक नये युग की शुरुआत बतायाः

> पिछला इतवार उत्कल देस के लिए एक महान दिन था। उस दिन एक बड़े उद्देश्य के लिए इस शहर के महानुभाव एक साथ एकत्र हुए। ओड़िसा की भाषा कैसे विकसित हो और हम मिश्रित ओड़िया, जो सरकारी हलक़ों में इस्तेमाल की जाती है — उसकी जगह शुद्ध ओड़िया को कैसे लायें ताकि सबसे क़ाबिल लोग ही अमला बन सकें — यही इस बैठक के उद्देश्य थे।[3]

तब यह सोचा जा रहा था कि सरकारी क्षेत्र में ज़्यादा शुद्ध ओड़िया भाषा के इस्तेमाल से स्थानीय लोगों को नौकरी मिलने की संभावना बेहतर होगी जबकि मिली-जुली ओड़िया दूसरे समुदाय के लोगों को ज़्यादा फ़ायदा पहुँचाती थी। यानी भाषा को 'शुद्ध' बनाने और 'सुधारने' जैसे मुद्दे रोज़गार की संभावनाओं से गहराई से जुड़ गये।

भाषा को बढ़ावा देने के लिए पुराने और पारंपरिक धार्मिक ग्रंथों को सस्ते में व्यापक रूप से उपलब्ध कराना सबसे कारगर उपाय माना गया। यह उम्मीद व्यक्त की गयी कि छपी हुई धार्मिक किताबें ओड़िया लोगों के बीच देशज (वर्नाक्युलर) शिक्षा को लोकप्रिय बनायेंगी[4]। जो लोग इसमें सक्रिय हुए उन्हें इस बात का अहसास था कि ओड़िया में छपा साहित्य 'पिछड़ी' अवस्था में था और ओड़िया पढ़े-लिखे लोगों की तादाद कम थी। इन समस्याओं से निपटने के लिए उन्होंने ओड़िया बोलने वालों को साथ लाने पर ज़ोर दिया चाहे वो ओड़िसा की तत्कालीन सीमाओं के बाहर रहते हों। इस प्रकार 'भाषा' के ज़रिये राष्ट्र/समुदाय की परिकल्पना के संकेत मिलने शुरु हो जाते हैं। 'भाषा' को बेहतर बनाने के प्रयास के केन्द्र में एक समुदाय के सामान्य हित का विचार देखा जा सकता है। मगर यह अहसास भी मौजूद था कि इस अपेक्षाकृत नये विचार से स्वयं कल्पित समुदाय के सदस्य ओत-प्रोत नहीं थे बल्कि भाषाई पहचान की चेतना का अभाव 'राष्ट्र' के 'पिछड़ेपन' का एक पहलू माना गया। अतः एक फलते-फूलते छपे साहित्य और वर्नाक्युलर तालीम में विस्तार को 'ओड़िया राष्ट्र' के निर्माण के लिए ज़रूरी माना गया। आगे चलकर एक पीढ़ी बाद ओड़िया राष्ट्रवादियों ने यह तर्क दिया कि ओड़िया-भाषी लोगों को विभिन्न प्रशासनिक इकाइयों के तले रख राष्ट्र/समुदाय को 'तोड़ने' की जानबूझ कर कोशिश की गयी। समुदाय के उत्थान के लिये प्रशासनिक रेखाओं को भाषा के आधार पर पुनः खींचने की माँग ज़ोर पकड़ गयी। बीसवीं सदी के शुरुआती दशकों में ओड़िया लोगों की हालत पर यह टिप्पणी की गयीः

> बीसवीं शताब्दी का एक ओड़िया व्यक्ति जब अपनी आँखें खोलता है तो पाता है कि उसका देश भारतीय महाद्वीप में एक ख़ास तरह से बँटा हुआ है। वह अपने अन्दर एक अधूरापन महसूस करता है और उसे लगता है कि भाई-भाई के बीच एक नक़ली दीवार उठा दी गयी है... और इस वजह से राष्ट्रीय एकता की चेतना नष्ट की जा रही है। इस तरह अपनी भाषा और समुदाय से लगाव-जुड़ाव जो सब में होता है, कमज़ोर पड़ जाता है।[5]

यहाँ पर भाषा के प्रति लगाव को सहज और स्वाभाविक मान लिया गया और मनुष्य-जनित भी। समकालीन ओड़िया प्रेस में ओड़िसा के स्कूलों में ओड़िया की जगह बांग्ला के प्रयोग को ओड़िया भाषा के जीने-मरने का सवाल माना गया। इस क़दम के पीछे तरह-तरह के कारणों को ज़िम्मेदार ठहराया गया। कभी ये कहा गया कि ओड़िया में पाठ्य-पुस्तकों की कमी है या शिक्षा विभाग के कनिष्ठ अधिकारी अपनी भाषा के प्रति लापरवाह थे या ये कि सरकारी हलक़ों में ओड़िया को एक पिछड़ी भाषा माना जाता था।

इसके जवाब में ओड़िया भाषा के दर्जे को अनेक तर्कों के सहारे उठाने की कोशिश की गयी। भाषा की 'ऐतिहासिकता' को साबित किया गया, उसके भौगोलिक क्षेत्रफल को और फैलाया गया, और उसके विशाल साहित्य

पर चर्चा हुई। साथ ही यह ज़ोर देकर भी कहा गया कि ओड़िया एक आर्य भाषा है जो जनजातीय लोगों की ज़बान से अलग है। लेकिन अंग्रेज़ी और फ़ारसी से ओड़िया भाषा को ख़तरा नहीं माना गया। अंग्रेज़ी को सरकारी नौकरियों और सामाजिक उत्थान के लिए ज़रूरी माना गया, ख़ासतौर पर फ़ारसी के बाद।

ऐसा माना गया कि ओड़िया को सबसे अधिक ख़तरा बांग्ला से था। ओड़िया के स्थान पर बांग्ला को लाये जाने के प्रस्ताव के विरुद्ध कटक में 'चुनिंदा लोगों' ने सरकार को एक याचिका प्रस्तुत की। जाने-माने ओड़िया लेखक फकीर मोहन सेनापति के अनुसार पाँच सौ लोगों ने याचिका पर दस्तख़त करके बंगाल सरकार को भेजी। अहम बात ये हुई कि इसे बालेश्वर के कलक्टर जॉन बीम्स और ओड़िसा डिविज़न के आयुक्त टी.ई. रैवेन्शॉ का समर्थन मिला। परिणाम सकारात्मक रहा। सरकार ने ओड़िया हटाने के प्रस्ताव को रद्द कर दिया। ज़ाहिर है इसे ओड़िया लोगों की 'विजय' माना गया जिसका सेहरा रैवेन्शॉ जैसे सहानुभूति रखने वालो अधिकारियों के सिर पर रखा गया।[6] लेकिन सरकारी फ़ैसले को दोषपूर्ण मानने वाले भी मौजूद थे। *उत्कल हितैषिणी* (संपादक कालीपद बन्द्योपाध्याय) ने बांग्ला, जबकि *उत्कल दीपिका* (संपादक गौरीशंकर राय) ने ओड़िया के पक्ष में तर्क दिये। ओड़िया बनाम बांग्ला विवाद और गहराने लगा।

1868 के जाड़े में डॉ. राजेन्द्रलाल मित्र, जो एक प्रतिष्ठित विद्वान थे, ओड़िसा आये। वह आधिकारिक रूप से प्राचीन और मध्यकालीन ओड़िसा के पुरातत्विक अवशेषों पर सामग्री इकट्ठा करने के उद्देश्य से आये थे। उनकी यात्रा ने ओड़िसा में बहुत उत्साह जगाया। *उत्कल दीपिका* के संपादक ने उम्मीद व्यक्त की कि डॉ. मित्र ओड़िसा के महान अतीत को उजागर कर उसकी वर्तमान दयनीय अवस्था से उबारने में योगदान देंगे। लेकिन राजेन्द्रलाल मित्र ने तमाम उम्मीदों पर पानी फेर दिया। दिसम्बर 1868 में उन्होंने कटक डिबेटिंग क्लब में भाषा पर दिये अपने आख्यान में कहा कि ओड़िसा का उद्धार तब तक नहीं तो सकता जब तक ओड़िया उसकी भाषा रहेगी। उन्होंने कहा कि ओड़िया का तो गणित ही उसके विकास में बाधक था। दुर्भिक्ष आयोग के मुताबिक़ ओड़िसा की आबादी क़रीब बीस लाख थी। उसमें से अगर महिलाओं और बच्चों की संख्या घटा दी जाये तो संभावित साक्षर ओड़िया पाठकों की संख्या बचती थी लगभग बारह लाख। डॉ मित्र के अनुसार एक स्वतन्त्र ओड़िया साहित्य के पनपने के लिए यह संख्या बहुत कम थी। दूसरी ओर बांग्ला-भाषी लोग कहीं अधिक थे इसलिए बांग्ला साहित्य पढ़ने वाले ज़्यादा थे — अतः बांग्ला साहित्य अधिक विकसित था। 1868 की अन्तिम तिमाही में जहाँ बांग्ला में क़रीब तीन सौ किताबें छपी थीं वहीं ओड़िया में मात्र तीन या चार। राजेन्द्रलाल मित्र ने अपना फ़ैसला सुना दिया — ओड़िया हटाकर बांग्ला लाना ही ओड़िसा के लोगों के हित में था। राजेन्द्रलाल मित्र की निगाह में मुख्य मुद्दा ये नहीं था कि ओड़िया एक स्वतन्त्र भाषा है या नहीं। उनके लिए यह सभ्यता के विकास का सवाल था जो एक पिछड़ी भाषा से चिपके रहने से मुमकिन ही नहीं था। उनके तर्कों से बांग्ला-समर्थक गुट खुश हुआ और वे सरकारी अधिकारी भी जो प्रशासनिक कारणों से बांग्ला के पक्ष में थे।

बांग्ला के पक्षधरों ने भाषाओं की संख्या के मुद्दे को उन दिनों बनती हुई राष्ट्रीय पहचान से भी जोड़ दिया। कहा गया कि अनेक भाषाओं का प्रयोग एकीकृत राष्ट्रीय पहचान के बनने में बाधक है। 12 सितम्बर 1873 को *मॉडर्न रिव्यू* में छपे एक निबन्ध में राजेन्द्रलाल मित्र ने तर्क दिया कि सरकार द्वारा ओड़िया और असमिया जैसी भाषाओं को प्रोत्साहन दिये जाने से लोग अनावश्यक रूप से बँट जायेंगे। उन्होंने कहा कि चूँकि ओड़िसा, बंगाल और असम में प्रचलित भाषाओं को बोलने में व्यवहार में बहुत कम फ़र्क़ था, इसलिए इन भाषाओं के आपसी फ़र्क़ को काफ़ी आसानी से दूर किया जा सकता था। बक़ौल डॉ. मित्र, 30 सितम्बर 1872 को जारी लेफ़्टिनेंट गवर्नर के आदेश में ओड़िया, असमिया और बांग्ला को अलग भाषाई दर्जा देकर सरकार ने भाषाई एकरूपता लाने का मौक़ा खो दिया था। इसी तरह के विचार केशब चन्द्र सेन ने भी व्यक्त किये। उन्होंने लिखा कि सरकार बांग्ला को बंगाल तक सीमित करके तीनो प्रांतों की भाषाई एकता की संभावना को समाप्त करना चाहती थी। बाद में रबीन्द्र नाथ टैगोर ने भी यही महसूस किया। उन्होंने लिखा कि हालाँकि एकीकरण की प्रक्रिया ब्रितानी शासन की स्वाभाविक उपज थी किन्तु वह फूट डाल कर राज करो की नीति भी अपना रहा था। सरकार ओड़िसा और असम से बांग्ला भाषा को बहिष्कृत करके वहाँ की बोलियों को कृत्रिम तरह से मज़बूत बना रही थी। ऐसे विचारों की ओड़िसा में भी भरमार थी। एक स्थानीय अख़बार *बिदेशी* का मानना था कि बंगालियों और ओड़ियाओं के बीच तनाव के

पीछे 'पॉलिसी' नामक एक अंग्रेज़ चुड़ैल थी जो कैम्पबेल की हाल में जन्मी बेटी थी और लॉर्ड आर्गाइल की दुलारी भतीजी थी।[7]

1870 में एक पुस्तिका छपी — *ओड़िया स्वतंत्र भाषा नौहे*।[8] इसके लेखक थे काँतिचन्द्र भट्टाचार्य जो बालेश्वर के एक स्कूल टीचर थे और डा. राजेन्द्रलाल मित्र को अपने संरक्षकों में गिनते थे। इस छोटी सी किताब में उस समय के तमाम भाषाई सिद्धान्तों और वैज्ञानिक तर्कों के सहारे यह सिद्ध करने की कोशिश की गयी कि ओड़िया एक स्वतन्त्र भाषा न होकर महज़ बांग्ला का एक विकृत रूप थी। काँतिचन्द्र भट्टाचार्य ने ज़ोर देकर कहा कि बंगाल और ओड़िसा प्रदेशों में बुनियादी अन्तर नहीं था — न ऊँचे पहाड़, घने जंगल या समुन्दर या धर्म, रीति-रिवाज, तथा शैक्षणिक विकास का गहरा फ़र्क़। उन्होंने एक और मान्यता प्रस्तुत की। उनके अनुसार शुद्ध बांग्ला केवल कलकत्ता और उसके आस-पास बोली जाती थी और कलकत्ता से दूरी बढ़ने के साथ भाषा की शुद्धता घटती जाती थी। मसलन उत्तरी और पूर्वी बंगाल की बांग्ला कलकत्ता की शुद्ध बांग्ला का विकृत रूप थी। इसी तर्क को आगे बढ़ाते हुए काँतिचन्द्र भट्टाचार्य ने पूछा कि बंगाल के दक्षिण में स्थित ओड़िसा की भाषा को भी बांग्ला का अशुद्ध संस्करण क्यों न माना जाये?

उनके अनुसार क़बीलों से नज़दीकी ओड़िया भाषा को 'अशिष्ट, कानफोड़ू और कुरूप' बनाती थी। भट्टाचार्य ने ओड़िया पाठ्य-पुस्तकों, अख़बारों और शब्दकोशों से उदाहरण देकर यह साबित करने का प्रयास किया कि बांग्ला और ओड़िया का साझा शब्दभंडार था। व्याकरण के स्वरूप में अन्तर के लिए पुरानी बांग्ला में आये बदलाव और क़बायली भाषाओं के असर को ज़िम्मेदार ठहराया गया। काँतिचन्द्र भट्टाचार्य के तर्कों की भाषाशास्त्रीय विश्वसनीयता भले ही कम रही हो लेकिन उनकी पुस्तिका की उस समय की पत्रिकाओं में ख़ूब चर्चा हुई। इसमें *Modern Review, Journal of the Asiatic Society of Bengal, The Education Gazette* तथा *उत्कल दीपिका* और *उत्कल हितैषिणी* शामिल थे। रंगलाल बंद्योपाध्याय, भूदेव मुखोपाध्याय और जॉन बीम्स ने पुस्तक पर टिप्पणियाँ कीं। काँतिचन्द्र भट्टाचार्य ने बांग्ला और ओड़िया के बीच समानता को रेखांकित करके अपने निष्कर्ष निकाले। बांग्ला के बेहतर होने को उन्होंने एक सहज और स्वाभाविक तथ्य माना और ओड़िया को बांग्ला का एक विकृत रूप बता कर उन्होंने उसे एक निम्न दर्जा प्रदान किया। साथ ही ओड़िया भाषा और समाज को विकास की सीढ़ी में नीचे रखकर उन्होंने ओड़िया लोगों के पिछड़े होने की छवि मज़बूत की। ओड़िया पर जनजातीय भाषाओं के प्रभाव की ओर बार-बार इशारा करके उन्होंने उसके एक सम्मानजनक आर्य भाषा होने के दावे पर प्रश्नचिन्ह लगा दिए। आने वाले वर्षों में इन सब का ओड़िया के विकास पर अहम असर पड़ा।

राजेन्द्रलाल मित्र और काँतिचन्द्र भट्टाचार्य के बाद ओड़िया की तुलना में बांग्ला को बेहतर बताने वाले अनेक लेख छपे। 1869 और 1870 में *उत्कल हितैषिणी* ने ऐसे कई लेख छापे। उसके संपादक ने एक लेख में कहा कि ओड़िसा तो बंगाल के राजनीतिक और सांस्कृतिक प्रभुत्व में पिछले सात सौ बरस से था। उनके अनुसार ओड़िसा तो सभ्यता के हर पहलू में बंगाल का ऋणी था। इस दावे को पुख़्ता करने के लिए अनेक 'ऐतिहासिक' तथ्य जुटाये गये। मसलन, ओड़िसा के मध्यकालीन महान गंग वंश के राजा मूलतः बंगाल से आये थे और बाद में बंगाली आक्रमणकारी काला पहाड़ ने ओड़िसा की स्वतन्त्रता समाप्त कर दी। आर्थिक क्षेत्र में बंगाली संत चैतन्य महाप्रभु के वैष्णव मत ने ओड़िसा में बौद्ध धर्म ख़त्म कर दिया। यही नहीं, यह भी कहा गया कि चैतन्य से पहले ओड़िया साहित्य लगभग शून्य था। और चैतन्य के वैष्णववाद से ही मध्यकालीन ओड़िया साहित्य पनपा।[9] अतः बांग्ला की बेहतरी के दावों को ऐतिहासिक जामा पहनाने के प्रयास होने लगे।

कटक स्टार में छपे एक लम्बे लेख में उमाचरण हालदार ने ओड़िया को बांग्ला लिपि में लिखने का सुझाव दिया। उन्होंने कहा कि बांग्ला लिपि देखने में अधिक सुन्दर थी जबकि ओड़िया बदसूरत और असुविधाजनक। हालदार ने लिखा कि अगर काग़ज़ और स्याही ओड़िसा में बंगाल से आयात किये जा रहे थे तो लिपि आयात करने में क्या हर्ज हो सकता था?[10] इसके साथ ही ओड़िसा के स्कूलों में बांग्ला को पुनः लाने के लिए एक हस्ताक्षर अभियान छेड़ा गया। बांग्ला तो ओड़िसा के स्कूलों और कचहरी में आधिकारिक तौर पर आयी नहीं किन्तु ओड़िया बनाम बांग्ला विवाद की आग धधकती रही।

ओड़िया की स्वतन्त्र पहचान की हिमायत करने वालों के लिए यह ज़रूरी था कि वे यह साबित करें कि ओड़िया

बांग्ला से कितनी भिन्न थी। 'बांग्ला-समर्थक गुट' के भाषाई और संख्या पर आधारित दावों का जवाब देने वाले सामने आये। इनमें अग्रणी थे गौरीशंकर राय जिन्होंने राजेन्द्रलाल मित्र और उनके सहयोगियों के प्रत्युत्तर में अपने तर्क रखे। राय ने कहा कि ओड़िया भाषा उत्तर के मिदनापुर से लेकर दक्षिण में गंजाम और पूर्व में बंगाल की खाड़ी के पश्चिम में सम्बलपुर तक बोली जाती थी। यह क्षेत्रफल राजेन्द्रलाल मित्र के बखान किये गये ओड़िया-भाषी इलाक़े से कहीं अधिक बड़ा था। दूसरे ओड़िया और बांग्ला के छपे साहित्य की आपसी तुलना अनुचित थी क्योंकि ओड़िया का छपा साहित्य अपने शैशव-काल में था और समय के साथ बांग्ला के समकक्ष हो जायेगा, बशर्ते उस पर पर्याप्त ध्यान दिया जाये। *उत्कल दीपिका* ने स्टर्लिंग जैसे औपनिवेशिक विद्वानों को उद्धृत करके कहा कि मध्यकालीन ओड़िसा के गंग-वंशीय राजा वास्तव में बंगाल से नहीं बल्कि दक्षिण से आये थे।[11]

अनेक लेखों में बांग्ला संस्कृति और लिपि के बेहतर होने के दावों को खोखला ठहराया गया। बांग्ला के जाने-माने विद्वान और कवि रंगलाल बंद्योपाध्याय ने ओड़िसा के लोगों पर बांग्ला भाषा या उसकी लिपि थोपने का विरोध किया। गौरी शंकर राय ने लिखा कि बांग्ला-समर्थक काँतिचन्द्र भट्टाचार्य ने अपना सारा प्रमाण हाल में छपी ओड़िया पुस्तकों से जुटाया था जो बांग्ला-पुस्तकों के अनुवाद थे। उन्होंने कहा कि ओड़िया के पारंपरिक ग्रंथों से उसकी पृथक पहचान और मौलिकता का पता चलता है। राय ने अनेक देशज शब्दों का हवाला देकर कहा कि ऐसे शब्द बांग्ला में अज्ञात थे और यह ओड़िया के स्वतन्त्र भाषाई दर्जे को सिद्ध करता था। इसी प्रकार के कई और तर्क एक औपनिवेशिक अधिकारी जॉन बीम्स ने दिये। उन्होंने कहा कि ओड़िया-भाषी लोगों की कम संख्या ओड़िया को हटाने का आधार नहीं बन सकता था क्योंकि युरोप में डच, स्पेनी और पुर्तगाली जैसी भाषाएँ बोलने वालों की तादाद भी कम थी। और ओड़िया सिर्फ़ 'तटीय ज़िलों के बसे हुए सभ्य ज़िलों' की भाषा न होकर उन असंख्य जनजातीय लोगों की भाषा भी थी जो पश्चिम में नागपुर और दक्षिण में तेलंगाना प्रदेश तक फैले हुए थे।[12]

बीम्स के अनुसार इस विशाल क्षेत्र में ओड़िया ग़ैर-आर्य बोलियों की जगह लेती जा रही थी और उन इलाक़ों को सभ्य बनाने का काम बांग्ला से बेहतर कर रही थी। यहाँ ये ग़ौरतलब है कि बीम्स ओड़िया भाषी लोगों में एक आंतरिक एकरूपता या एकता की वकालत कर रहे थे जबकि बांग्ला-समर्थक बांग्ला को पूर्वी भारत के विभिन्न भाषाई खण्डों को जोड़ने वाली भाषा की भूमिका प्रदान कर रहे थे। उधर बीम्स ने ओड़िया बोलने वालों में ग़ैर-आर्य क़बायली लोगों को शामिल कर ओड़िया राजनीतिक हितों को पुष्ट करने की दिशा में अपना योगदान दिया। बीम्स ने स्पष्ट कहा कि ओड़िया, बांग्ला की अपेक्षा पुरानी और अलग भाषा हैः

> अगर केवल भाषाशास्त्रीय दृष्टि से देखा जाये तो इसमें कोई संदेह नहीं कि ओड़िया के स्वतन्त्र व्यक्तित्व के होने का अच्छा ख़ासा प्रमाण है। उपेन्द्र भंज और उसके समकालीनों की कविताएँ जिस भाषा में लिखी गयीं वह आज बोली जाने वाली भाषा से बिल्कुल अलग नहीं है और उसका हर शब्द मामूली से मामूली मज़दूर आज भी समझ लेता है... इसके स्वरूप अपरिवर्तित रहे हैं और पुरानी से पुरानी बांग्ला या हिन्दी से पुराने हैं। जब ओड़िया भाषा ने अपना स्वरूप ग्रहण कर लिया था बांग्ला तो तब थी ही नहीं... तब बंगाल के निवासी पुरबिया हिन्दी के अनेक बिगड़े रूप बोलते थे। जिसे हम बांग्ला भाषा कह सकते हैं उसका इस्तेमाल तो हाल ही में होना शुरु हुआ है।[13]

बीम्स ने ओड़िया के चरित्र को अपनी तरह से गढ़ा। उन्होंने ओड़िया की स्वतन्त्र पहचान को उसके पुरानेपन और रूढ़िवादी स्वभाव में खोजा। उन्होंने ओड़िया को इंडो-आर्य भाषा समूह में एक अपवाद मान कर उसे कहीं अधिक एकरूपता से नवाज़ा। एक अन्य औपनिवेशिक लेखक ग्रिएर्सन भी मानते थे कि ओड़िया भाषा की उपभाषाएँ बहुत कम थीं, सिवा मध्य भारत में प्रयुक्त भत्री के, जो एक अपवाद थी।[14] अनेक औपनिवेशिक टिप्पणीकारों की नज़र में ओड़िया क्षेत्र का अलग-थलग होना और 'पिछड़ापन' उसकी भाषा को 'सरल' या 'कम जटिल' बनाये रखने का कारण था। ओड़िया की स्वतन्त्र पहचान, पुरानापन या उसकी 'ऐतिहासिकता' के औपनिवेशिक

तर्क ओड़िया राष्ट्रवादियों को बहुत भाये। बीम्स और रैवेन्शॉ को ओड़िया आंदोलन में नायक का दर्जा हासिल हुआ। दूसरी तरफ़ आरंभिक ओड़िया राष्ट्रवादियों की ब्रितानी शासकों के प्रति वफ़ादारी भी कुछ हद तक भाषा-विवाद से समझी जा सकती है।

ओड़िसा में औपनिवेशिक शासन जिन विशिष्ट परिस्थितियों में शुरु हुआ उन्होंने भी ओड़िया भाषा की स्वतन्त्र पहचान को संदेहास्पद बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। औपनिवेशिक भाषाशास्त्रीय और प्रशासनिक प्रयासों ने देशज भाषाओं को ख़ास तरह से व्यवस्थित बना कर उनकी रूपरेखा तय की। भाषाओं को परिभाषित करने, उनके मानकीकरण और शब्दकोशों, व्याकरण तथा आधिकारिक शब्दावलियों के इस्तेमाल ने देशज भाषाओं के स्वरूप को नये रूपों में ढाला। भाषा के 'शुद्ध' रूप को निर्धारित करने की कोशिशें, बोलने वालों को गिनकर उनकी संख्या का पता लगाना और भाषाओं को विशेष क्षेत्रों से जोड़ कर देखने की प्रवृत्ति के दूरगामी परिणाम हुए।

आगामी दशकों में ओड़िया राष्ट्रवादियों ने औपनिवेशिक विद्वानों द्वारा जुटायी गयी जानकारी, जनगणनाओं और भाषा संबंधी विचारों में से चुन-चुन कर वह सब लिया जो ओड़िया राष्ट्रवाद के मज़बूत होने में सहायक था। इस प्रकार भाषा राजनीतिक चेतना का हिस्सा बनी। अन्ततः औपनिवेशिक राज्य ने ओड़िया को स्वतन्त्र दर्जा प्रदान तो किया किन्तु ओड़िया और बांग्ला के बीच रिश्ता तनावपूर्ण बना रहा।

अन्त में, ओड़िया पहचान के विकास पर भाषा-विवाद के प्रभाव के कुछ पहलुओं को स्पष्ट रेखांकित किया जा सकता है। पहली बात तो ये कि औपनिवेशिक प्रशासनिक सीमाओं ने बहुत महत्व हासिल किया। भाषा विवाद का सबसे अहम राजनीतिक परिणाम ये हुआ कि सभी ओड़िया-भाषी क्षेत्रों को एक प्रेसीडेंसी और बाद में पृथक ओड़िया प्रांत में गठित करने की माँग ज़ोर पकड़ती गयी। एक भाषा बोलने वालों को एक राजनीतिक या प्रशासनिक सीमा में रहना भी चाहिये — उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में मज़बूत होते इस विचार के दो अर्थ लगाये जा सकते हैं। पहला तर्क जो दिया गया वह ये था कि एकरूपता के लिए एक ही भाषा का प्रयोग एक प्रांत में होना चाहिए और दूसरा ये कि एक भाषा बोलने वालों को एक राजनीतिक इकाई में गठित करने के लिए राजनीतिक और प्रशासनिक सीमाओं को ज़रूरत अनुसार बदल देना चाहिए। इस संदर्भ में ओड़िया को स्वतन्त्र भाषा मनवाने के प्रयास अर्थवान हो जाते हैं। एक स्वतन्त्र भाषा के रूप में ओड़िया की विश्वसनीयता स्थापित करना इसलिए ज़रूरी था ताकि ओड़िया समाज एक पृथक भौगोलिक इकाई के लिए अपना राजनीतिक दावा पेश कर सके। इस दावे में यह विचार निहित था कि विगत में एक नैसर्गिक ओड़िया समुदाय मौजूद था। इस समुदाय की एक आधुनिक राष्ट्र की दिशा में 'स्वाभाविक' प्रगति की राह में ओड़िया-भाषी लोगों के बीच उत्पन्न भौगोलिक विभाजनों को 'अप्राकृतिक' अवरोध माना गया। अतः ओड़िया-भाषी क्षेत्रों की भौगोलिक एकता हासिल करना नैसर्गिक अवस्था को बहाल करने के रूप में देखा गया।

इस प्रक्रिया का एक अन्य पहलू भी चर्चा योग्य है। ओड़िया-पहचान की बहस में संख्याओं का बहुत महत्व था।[15] संख्या जितनी बड़ी होगी लक्ष्य को उतनी ही वैधता प्राप्त होगी। पहचान की राजनीति की यह माँग थी कि ओड़िया-भाषी लोगों की संख्या को बड़ी से बड़ी सिद्ध किया जाये। तमाम जनजातीय लोगों को 'ओड़िया' के अधीन यह तर्क देकर लाया गया कि उन्हें 'सभ्य' बनाने के लिए ओड़िया से बेहतर कोई अन्य 'आर्य' भाषा नहीं थी। जनजातीय समुदायों को इन ओड़िया समर्थकों ने उसी हेय दृष्टि से देखा जिससे बांग्ला के हिमायती ओड़िया-भाषी लोगों को देखते थे। भाषा को नस्ल, धर्म, जाति, सभ्यता और काल्पनिक सामूहिक ऐतिहासिक स्मृति के ताने-बाने में बुना गया और साथ ही भाषा की छाप वस्तुतः इन सब पर छोड़ी गयी।[16] भाषा को एक अनोखी सांस्कृतिक वस्तु का दर्जा दिया गया, यह मान कर कि भाषा लोगों की चेतना को निर्णायक तौर पर प्रभावित करती है। समुदाय के अन्य सांस्कृतिक आयामों में भाषा ऊपर उठा दी गयी। ओड़िया समुदाय की 'विलक्षण' अथवा 'निराली' पहचान का सर्वाधिक बोझ 'भाषा' के कंधों पर डाल दिया गया। और भाषा राष्ट्रवाद की लड़ाई में ब्रह्मास्त्र बनी।

संदर्भ

1. विवरण के लिए देखें मेरा शोध प्रबंध *द मेकिंग ऑफ़ ए कल्चरल आइडेंटिटीः लैंग्वेज, लिटरेचर ऐण्ड जेंडर इन ओड़िसा इन लेट नाइन्टीन्थ ऐण्ड अर्ली ट्वेन्टिएथ सेन्चुरीज़*, इतिहास विभाग, स्कूल ऑफ़ ओरिएन्टल ऐण्ड अफ़्रीकन स्टडीज़, लंदन विश्वविद्यालय, 1997. इस लेख में सहयोग के लिए मैं संजय शर्मा की आभारी हूँ.
2. उत्कल *दीपिका*, 26 मई 1867. देखें निवेदिता मोहन्ती, *ओड़िया नैशनलिज़्मः क्वेस्ट फ़ॉर ए यूनाइटेड ओड़िसा 1866-1936*, दिल्ली, 1982, पृ. 25-26.
3. *उत्कल दीपिका*, 26 मई 1867.
4. *वही*
5. टू बैचर्ल्स ऑफ़ आर्ट्स, *द ओड़िया मूवमेंटः बीइंग अ डिमाण्ड फ़ॉर यूनाइटेड ओड़िसा*, आस्का, 1919 पृ. 2.
6. *उत्कल दीपिका*, 16 जनवरी 1869.
7. *बिदेशी*, 15 नवम्बर 1873.
8. काँतिचन्द्र भट्टाचार्य, *ओड़िया स्वतंत्र भाषा नौहे*, कलकत्ता, 1870.
9. निबन्ध का सारांश और उसके तर्कों का खंडन *उत्कल दीपिका*, 16 अप्रैल 1870 में छपा.
10. *उत्कल दीपिका*, 10 जुलाई 1869.
11. *उत्कल दीपिका*, 14 अगस्त 1869.
12. जॉन बीम्स, *ए कम्पैरेटिव ग्रामर ऑफ़ द मॉडर्न आर्यन् लैंग्वेजेज़ ऑफ़ इंडिया, खण्ड 1*, लंदन 1872, पृ. 118-9.
13. बीम्स, *वही*
14. जी. ए. ग्रिएर्सन, *लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ़ इंडिया भाग V*, कलकत्ता, 1870, पृ. 375.
15. इस संदर्भ में देखें, अर्जुन अप्पादुरई का लेख 'नम्बर इन द कोलोनियल इमैजिनेशन', कैरोल ए. ब्रेकेनरिज और पीटर वैन डर वियर (संपा.), *ओरिएन्टलिज़्म ऐण्ड द पोस्टकोलोनियल प्रेडिकामेंट*, फिलाडेल्फ़िया, 1993, पृ. 314-39.
16. बेनेडिक्ट ऐण्डर्सन, *इमैजिंड कम्युनिटीज़ः रिफ़्लेक्शन्स ऑन द ओरिजिन ऐण्ड स्प्रैड ऑफ़ नैशनलिज़्म*, लंदन, न्यूयॉर्क, 1983; निकोलस बी. डर्क्स (संपा.), *कोलोनियलिज़्म ऐण्ड कल्चर*, मिशिगन, 1992; बी. एस. कोह्न, 'द कमाँड ऑफ़ लैंग्वेज ऐण्ड द लैंग्वेज ऑफ़ कमाँड', रणजीत गुहा (संपा.) *सबॉल्टर्न स्टडीज़*, IV, दिल्ली, 1985.

रूपांतर/अनुवादः संजय शर्मा